इकाई 18 समस्या, संकट और ह्रास

इकाई की रूपरेखा

18.0 उद्देश्य

दिल्ली के सुल्तानों को अनेक राजनीतिक और प्रशासनिक समस्याओं का सामना करना पड़ा। समय के साथ-साथ यह समस्याएँ इतनी गहन हो गई कि इन्होंने राजनीतिक संकट को जन्म दिया और अंततः राजवंशों को पतन की ओर ले गई। इस इकाई से आप निम्न पहलुओं के बारे में समझ सकेंगे:

- राजत्व की प्रकृति,
- सुल्तान और अमीरों अथवा कुलीनों के बीच संघर्ष,
- वित्तीय व्यवस्था के संकट,
- क्षेत्रीय शक्तियों के उदय; और
- मंगोल।

18.1 प्रस्तावना

सल्तनत काल (1206–1526) में भारत में पाँच राजवंशों ने शासन किया: (i) इलबरी वंश, (ii) खलजी वंश, (iii) तुगलक वंश, (iv) सैय्यद वंश; तथा (v) लोदी वंश।

चूँकि तुर्क मध्य एशिया से आये थे इसलिए प्रारंभिक काल में वे भारत की राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था से पूर्णतया परिचित नहीं थे। इसलिए अपने शासन को बनाए रखने के लिए उन्होंने कई प्रशासनिक व्यवस्थाएँ प्रारम्भ कीं जो कुछ परिवर्तनों के साथ काफी समय तक प्रचलन में रहीं। उस काल के राजनीतिक इतिहास के अध्ययन से पता चलता है कि शासकों को बहुत-सी आंतरिक समस्याओं और बाह्य संकटों का सामना करना पड़ा। विशेष कर सुल्तान और अमीर वर्ग के बीच के लगातार संघर्ष ने दिल्ली सल्तनत को पतन की ओर अग्रसर किया।

18.2 राजत्व की प्रकृति

सल्तनत में किसी स्पष्ट और परिभाषित उत्तराधिकार के नियम का विकास नहीं हुआ। वंशानुगत या पैतृक उत्तराधिकार का सिद्धांत स्वीकार तो किया जाता था, परन्तु हमेशा उसका

पालन नहीं किया जाता था। ऐसा भी कोई नियम नहीं था कि केवल बड़ा पुत्र ही सिंहासन का उत्तराधिकारी होगा। एक बार तो एक पुत्री को भी शासन दिया गया (उदाहरण के लिए – रज़िया)। परन्तु किसी भी हालत में कोई गुलाम तब तक शासक नहीं बन सकता था, जब तक कि वह अपना मुक्ति-पत्र या स्वतंत्रता न प्राप्त कर ले। वास्तव में, उत्तराधिकार जिस रूप में सल्तनत में प्रचलित था, उसके विषय में कहा जा सकता है कि "जिसकी जितनी लंबी तलवार उसका उतना ही अधिक अधिकार।"

इस प्रकार, उत्तराधिकार के नियम के अभाव के कारण आरंभ से ही सत्ता पर अधिकार करने के लिए षड्यंत्र होने लगे। ऐबक की मृत्यु के बाद उसका पुत्र आराम शाह नहीं बल्कि ऐबक का दामाद और गुलाम-इल्तुतमिश पदारूढ़ हुआ। इल्तुतमिश की मृत्यु (1236) के बाद भी लम्बे समय तक सत्ता का संघर्ष और संकट चलता रहा। अंततः 1266 ई. में इल्तुतमिश के गुलाम बलबन ने, जो "चालीस के दल" का सदस्य भी था, गद्दी पर अधिकार कर लिया। आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि किस प्रकार बलबन ने राजत्व के विचार को एक नया रूप दिया और सुल्तान के पद की प्रतिष्ठा को पुनर्स्थापित करने का प्रयास किया। लेकिन बलबन की मृत्यु के बाद हुए सत्ता के संघर्ष ने एक बार फिर दिखा दिया कि उत्तराधिकार का फैसला "तलवार" ही कर सकी। बलबन द्वारा नामांकित कैख़ुसरो की जगह कैक़ुबाद गद्दी पर बैठा दिया गया। बाद में खलजी अमीरों ने उसकी भी हत्या कर दी और खलजी वंश की नींव डाली। सन् 1296 में अलाउद्दीन खलजी ने अपने चाचा जलालुद्दीन खलजी की हत्या करके सत्ता पर अधिकार कर लिया। अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद भी गृह युद्ध और सत्ता छीनने का संघर्ष शुरू हो गया। अमीरों के विद्रोहों के कारण मुहम्मद तुगलक का शासन कमज़ोर हुआ। फीरोज़ तुगलक की मृत्यु के बाद सत्ता की स्पर्धा ने तुगलक वंश का अंत करके सैय्यद वंश (1414–1451) की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया।

लोदी वंश (1451–1526) की स्थापना के साथ एक नया तत्व — अफगान सामने आया। प्रभुसत्ता या राजतंत्र के विषय में अफगानों के विचार बहुत भिन्न थे। वे अपने ऊपर सुल्तान की सत्ता मानने को तो तैयार थे, परन्तु पूरे राज्य को अपने प्रजातीय दलों या कुल (फरमूली, सरवानी, नियाज़ी आदि) में बांटना चाहते थे। सिकन्दर लोदी की मृत्यु के बाद (1517 ई.), साम्राज्य का बंटवारा इब्राहीम और जलाल के बीच हो गया। शाही विशेषाधिकार और सुविधाओं का भोग भी कुल के सदस्य समान रूप से बाँटते थे। उदाहरण के लिए, हाथी रखना सुल्तान का विशेषाधिकार था, परन्तु कहा जाता है कि आज़म हुमायूं सरवानी के पास लगभग 700 हाथी थे।

इसके अतिरिक्त अफगान अपनी प्रजातीय सेना रखने के सिद्धांत में भी विश्वास करते थे। इसने आगे चलकर केन्द्रीय सरकार की सैनिक क्षमता को हानि पहुँचाई। सिकन्दर लोदी ने अफगान अमीरों पर नियंत्रण रखने की चेष्टा की, परन्तु अफगान विचारधारा का झुकाव विकेंद्रीकरण की ओर था। इस विचार ने अंत में राज्य में दरार पैदा कर दी।

18.3 सुल्तान और अमीरों के बीच संघर्ष

सल्तनत काल का राजनीतिक इतिहास दर्शाता है कि सल्तनत का संगठन और ह्रास मुख्यतः कुलीनों (अमीरों) की रचनात्मक और विनाशकारी गतिविधियों का परिणाम था। अमीरों की लगातार यह चेष्टा थी कि वे अधिकतम राजनीतिक एवं आर्थिक लाभ प्राप्त कर लें।

इलबरी वंश (1206–90 ई.) के दौरान संघर्ष के तीन प्रमुख मुद्दे थे — उत्तराधिकार, अमीर वर्ग का संघटन और सुल्तान तथा अमीरों के बीच आर्थिक एवं राजनीतिक शक्तियों का विभाजन। जब कुतुबुद्दीन ऐबक सुल्तान बना तो प्रभावशाली अमीरों ने उसकी सत्ता को स्वीकार नहीं किया। इनमें प्रमुख थे कुबाचा (मुल्तान और उच्छ का गवर्नर), यल्दूज़ (गज़नी का गवर्नर) तथा अली मर्दान (बंगाल का गवर्नर)। इल्तुतमिश को भी यह समस्या उत्तराधिकार में मिली। उसने कूटनीतिज्ञता और शक्ति के प्रयोग से इसका समाधान किया। बाद में इल्तुतमिश ने अमीरों को **तुर्कान-ए-चिहिलगानी** ("चालीस का दल") नामक सामूहिक गुट में संगठित किया। यह गुट व्यक्तिगत रूप से उसके प्रति वफादार था। "चालीस के दल" के अमीरों की

(देखिए इकाई 17)। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं था कि "चालीस के दल" में आंतरिक मतभेद और कलह नहीं था। केवल एक बात पर इनके विचारों में पूरी एकता थी — इस विशिष्ट गुट में गैर-तुर्की अमीरों के प्रवेश को रोकना। "चालीस का दल" लगातार यह कोशिश करता रहता था कि सुल्तान पर उसका प्रभाव बना रहे। सुल्तान भी इस दल को नाराज़ करना नहीं चाहता था, लेकिन सुल्तान अन्य दलों के अमीरों को उच्च पदों पर नियुक्त करने का अधिकार भी नहीं छोड़ना चाहता था। इस सबके बीच इल्तुतमिश ने एक अत्यन्त कौशलपूर्ण संतुलन बनाए रखा, परन्तु उसकी मृत्यु के बाद यह संतुलन समाप्त हो गया। उदाहरण के लिए, इल्तुतमिश ने अपने जीवनकाल में ही अपनी पुत्री रजिया को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। परन्तु उसकी मृत्यु के बाद कुछ अमीरों ने रज़िया को शासक स्वीकार नहीं किया, क्योंकि उसने "चालीस के दल" के दबाव का मुकाबला करने के लिए गैर-तुर्की (एबीसीनियाई और भारतीय) अमीरों को संगठित करना शुरू किया।

इस दल (चालीस का दल) के काफी अमीरों द्वारा रज़िया का विरोध करने का यही एक मुख्य कारण था। इन लोगों ने उसके भाई रूक्नुद्दीन को समर्थन दिया, क्योंकि वह अयोग्य और कमज़ोर था। उन्हें पूरी आशा थी कि वह उनकी शक्ति को नष्ट करने का प्रयास नहीं करेगा। नसीरूद्दीन महमूद (1246–66 ई.) के शासन काल में भी यही संघर्ष चलता रहा। बलबन का हटाया जाना सबसे बड़ा शक्ति परीक्षण था। बलबन सुल्तान महमूद का **नायब** (उप) था और "चालीस के दल" का सदस्य था। सुल्तान ने उसे हटाकर उसके स्थान पर एक भारतीय मुसलमान इमादउद्दीन रेहान की नियुक्ति की। अमीरों के तीव्र विरोध के सामने सुल्तान को झुकना पड़ा। रेहान को हटाकर बलबन को पुनर्स्थापित किया गया।

बलबन के शासन काल (1266–87 ई.) में **तुर्कान-ए-चिहिलगानी** का प्रभाव कम हो गया। सुल्तान बनने से पहले बलबन स्वयं "चालीस के दल" का सदस्य था। इसलिए वह अमीरों की विद्रोही प्रवृत्ति से भली-भांति परिचित था। अत: बलबन ने उनमें से सर्वाधिक शक्तिशाली अमीरों को अपना निशाना बनाया और कई अमीरों की हत्या करा दी। उसने अपने रिश्ते के भाई को भी नहीं छोड़ा और उसे मरवा दिया। साथ ही उसने अपने प्रति वफादार अमीरों के एक गुट का गठन भी किया, जिन्हें "बलबनी" कहा गया। "चालीस के दल" के अनेकों अनुभवी अमीरों के हटाए जाने से राज्य उनकी सेवाओं से वंचित रह गया। "बलबनी" गुट के अनुभवहीन अमीर इस कमी को पूरा नहीं कर पाए। इसके परिणामस्वरूप इलबरी वंश के शासन का अंत और खलजी वंश की स्थापना हुई।

अलाउद्दीन खलजी के शासन काल (1296–1316 ई.) में अमीरों के समूह की संरचना का विस्तार हुआ। अब अमीरों का कोई एक दल राज्य पर अपने एकाधिकार का दावा नहीं कर सकता था। अब नियुक्ति का मुख्य आधार स्वामीभक्ति और योग्यता था कोई विशेष प्रजाति या मत नहीं। साथ ही, वह अमीरों पर विभिन्न प्रकार से नियंत्रण भी रखता था (देखिए इकाई 17)। इसके अतिरिक्त, अलाउद्दीन द्वारा भू-राजस्व की दर को 50 प्रतिशत तक बढ़ाने से (देखिए इकाई 16) भी अमीरों को संतुष्टि हुई होगी क्योंकि **इक्तों** की आय बढ़ने से उनके वेतन भी बढ़ गए होंगे। सीमाओं के विस्तार के कारण संसाधनों में भी इतनी वृद्धि हो गई कि योग्यता के आधार पर नए व्यक्तियों को स्थान मिल सके। मलिक काफूर नामक अबीसीनियाई गुलाम का उदाहरण सुप्रसिद्ध है (वह गैर-तुर्की होते हुए भी सर्वाधिक महत्वपूर्ण अमीर बन गया)। परन्तु यह स्थिति बहुत लम्बे समय तक न चल सकी। अलाउद्दीन खलजी की मृत्यु के बाद अमीरों के बीच षड्यंत्र और संघर्ष खुलकर होने लगे तथा खलजी वंश के शासन का अंत हो गया।

जहाँ तक तुगलक वंश का प्रश्न है तो आप देख ही चुके हैं कि मुहम्मद तुगलक ने किस प्रकार घुमा-फिराकर बार-बार अमीरों को संघटित करने का प्रयास किया (इकाई 17)। लेकिन उनपर नियंत्रण रखने के उसके सभी प्रयत्न विफल हुए। खुरासानी अमीरों, जिन्हें वह "**अइज़्ज़ा**" (प्रिय) कहता था, ने भी उसे धोखा दिया। अमीरों द्वारा उत्पन्न की गई समस्याओं का अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि उसके विरुद्ध लगभग 22 विद्रोह हुए और उसे अपना एक बड़ा क्षेत्र खोना पड़ा (दक्कन का यह क्षेत्र बहमनी राज्य के नाम से प्रसिद्ध हुआ)।

मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के बाद समस्या नियंत्रण से बाहर हो गई। इन परिस्थितियों में फीरोज़ तुगलक से अमीरों के प्रति सख्ती बरतने की अपेक्षा नहीं की जा सकती थी। उसके काल में अमीरों को बहुत-सी सुविधाएँ दी गई। अमीर अपने **इक्तों** को वंशानुगत बनाने में

सफल हुए। सुल्तान की तुष्टिकरण की नीति अमीरों को प्रसन्न रख सकी, परन्तु आगे चलकर यह विनाशकारी सिद्ध हुई। सेना अत्यन्त अयोग्य और अक्षम हो गई, क्योंकि अलाउद्दीन खलजी द्वारा प्रारंभ की गई घोड़े दागने की प्रथा लगभग समाप्त कर दी गई थी। अत: फीरोज़ तुगलक के बाद उसके उत्तराधिकारी और बाद के शासकों के लिए दिल्ली सल्तनत के पतन के प्रवाह को रोकना असंभव था।

सैय्यद (1414–51 ई.) और लोदी वंश (1451–1526 ई.) के काल में स्थिति कुछ उत्साहवर्धक नहीं दिखाई देती। सैय्यद तो संकट से निबटने की न तो इच्छा ही रखते थे और न ही वह इस योग्य थे। सिकन्दर लोदी ने आते हुए विनाश को रोकने का अंतिम प्रयास किया। लेकिन अफगानों के आंतरिक मतभेद और उनकी असीमित व्यक्तिगत महत्वाकांक्षाओं ने पतन की प्रक्रिया को और तीव्र कर दिया। अंतत: दिल्ली सल्तनत पर अंतिम प्रहार बाबर के हाथों हुआ।

बोध प्रश्न 1

1) सबसे बड़े पुत्र को गद्दी मिलने के नियम के अभाव का दिल्ली सल्तनत के पतन में क्या योगदान रहा ?

....

....

....

....

....

2) अफगानों के राजत्व के सिद्धांत की प्रमुख विशेषताएँ बताइए।

....

....

....

....

....

3) सल्तनत के पतन में अमीरों की भूमिका का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए।

....

....

....

....

....

....

18.4 राजस्व प्रशासन का संकट

इल्तुतमिश ने **इक्ता** व्यवस्था के रूप में एक ठोस राजस्व अनुदान की नीति आरंभ की थी। इस व्यवस्था के द्वारा एक विशाल प्रशासनिक तंत्र के रख-रखाव की व्यवस्था की जाती थी। फीरोज़ तुगलक के काल में इस व्यवस्था के कार्यान्वयन में विकृति आ गई। उसके शासन काल में राजस्व अनुदान या **इक्ता** वंशानुगत और स्थायी हो गए। यह (शाही ?) सैनिकों **(यारान-ए हश्म)** पर लागू होता था। अफीफ के अनुसार, "किसी व्यक्ति की मृत्यु होने पर उसका पद स्थायी रूप से उसके पुत्र को मिल जाता था। अगर उसके कोई पुत्र न हो तो उसके दामाद को मिलता। अगर दामाद न हो तो उसके गुलाम को मिलता। अगर कोई गुलाम भी नहीं

धारकों से बचा हुआ अतिरिक्त धन (**फवाज़िल**) खजाने में जमा कराना बंद कर दिया। उसके काल में **इक्ता**-धारकों द्वारा अपने अनुदान को पुन: अपने आधीन अन्य लोगों को अनुदानित करने की प्रथा भी बढ़ गई।

इस सबका बहुत गंभीर प्रभाव पड़ा। इससे राज्य को केवल राजस्व की भारी हानि ही नहीं हुई, बल्कि स्थायी अनुदान के कारण अनुदान-धारकों ने अपने क्षेत्रों में अपनी जड़ें भली भांति जमा लीं, जिससे भ्रष्टाचार और विद्रोहों को बढ़ावा मिला।

18.5 क्षेत्रीय राज्यों का उदय

आप पहले ही पढ़ चुके हैं कि सल्तनत की स्थापना के समय से ही दिल्ली के सुल्तानों और उनके अमीरों के बीच संघर्ष चल रहे थे। लेकिन जब केन्द्रीय शक्ति मज़बूत थी तो विद्रोह सफलतापूर्वक दबा दिए गए। मुहम्मद तुगलक के शासन काल में 1347 में बहमनी राज्य की स्थापना के समय पहली बार राज्य के विघटन के लक्षण दिखाई दिए। परन्तु अगले पचास वर्षों तक सल्तनत सलामत (अक्षुण्ण) बनी रही। सन् 1398 में तैमूर के आक्रमण ने इसकी कमज़ोरियों को उजागर कर दिया। इसने अमीरों को सुल्तान की सत्ता से स्वतंत्र प्रभाव क्षेत्र विकसित करने का अवसर प्रदान किया। महत्वपूर्ण प्रांतीय गवर्नर अपने स्वतंत्र राज्य स्थापित करने लगे। मालवा में दिलावर खान (1401) ने, गुजरात में जफर खान (1407) ने, जौनपुर में ख्वाजा जहाँ (1394) ने तथा पन्द्रहवीं शताब्दी में राजस्थान के कुछ क्षेत्रों ने अपनी स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। बंगाल तो बुगरा खां के समय (13वीं सदी के अंत) से ही अर्द्ध-स्वतंत्र था (खंड 8 में क्षेत्रीय राज्यों पर विस्तार से चर्चा की जाएगी)। सल्तनत का वास्तविक प्रभाव क्षेत्र दिल्ली के आसपास के 200 मील तक सीमित हो गया था। इसके बहुत गहरे परिणाम हुए। गुजरात, मालवा, बंगाल और जौनपुर जैसे उपजाऊ क्षेत्रों के निकल जाने से राज्य के राजस्व संसाधनों में भारी कमी आई। विद्रोही तत्वों का दमन करने के लिए अब राज्य लम्बे युद्ध करने की स्थिति में नहीं था। सैय्यद और लोदी सुल्तानों के काल में तो स्थिति इतनी खराब हो गई थी कि नियमित राजस्व जमा करने के लिए भी वार्षिक सैनिक अभियान भेजने पड़ते थे।

उदाहरण के लिए, 1414 से 1432 ई. तक लगातार मेवात और कटेहर के छोटे-छोटे राजाओं के दमन के लिए सेनाएँ भेजनी पड़ी। इसी तरह बयाना और ग्वालियर के छोटे राज्य भी राजस्व देने से कतराने लगे। परिणामस्वरूप 1416 से 1506 ई. तक लगातार उनके विरुद्ध सेनाएँ भेजी गई। इस सबसे पता चलता है कि पन्द्रहवीं शताब्दी में सुल्तानों का नियंत्रण नाममात्र का ही रह गया था। इन परिस्थितियों में बहुत थोड़े से प्रयास से ही सल्तनत को उखाड़ फेंका जा सकता था।

18.6 मंगोल

दिल्ली सल्तनत के पतन के लिए मंगोल आक्रमण कहाँ तक उत्तरदायी थे? जैसा कि आप खंड 4 में पढ़ चुके हैं, सबसे पहले इल्तुतमिश के शासनकाल में दिल्ली सल्तनत पर मंगोलों का खतरा मंडराया। आपने यह भी देखा होगा कि सुल्तान ने किस प्रकार कूटनीति से इसे टाल दिया। थोड़े-थोड़े अंतराल के बाद यह आक्रमण मुहम्मद तुगलक के शासन काल तक जारी रहे। बलबन, अलाउद्दीन खलजी और मुहम्मद तुगलक मंगोलों के आक्रमण के प्रति सजग थे और उन्हें रोकने में पूर्णतया सफल रहे। मंगोल आक्रमणों का सामना करने में दिल्ली सुल्तानों को काफी धन व्यय करना पड़ा और बड़ी संख्या में सैनिक मारे गए। परन्तु ऐसा नहीं लगता कि इससे सल्तनत की शक्ति विशेष कमजोर हुई। कभी-कभी इससे लगे आघात बड़े थे, लेकिन कुल मिलाकर इन्होंने सल्तनत की अर्थव्यवस्था और राज्य तंत्र को अधिक नुकसान नहीं पहुंचाया।

बोध प्रश्न 2

1) फीरोज तुगलक द्वारा राजस्व अनुदान (**इक्ता**) व्यवस्था को स्थायी और वंशानुगत बनाने

के क्या परिणाम हुए ?

....

....

....

....

....

....

2) दिल्ली सल्तनत के पतन में क्षेत्रीय राज्यों के उदय का क्या योगदान था ?

....

....

....

....

....

....

18.7 सारांश

सल्तनत के पतन का एक राजनीतिक कारण उत्तराधिकार के किसी स्थापित और सार्वभौमिक नियम का अभाव था। सभी इस्लामी राज्यतंत्रों के इतिहास में स्थिति यही थी। जब तक सुल्तान शक्तिशाली था और उसे अमीरों के कुछ वर्गों का समर्थन प्राप्त था, तो कुछ हद तक वंशीय शासन बनाने की स्थिति में था। ऐसी परिस्थितियों में अमीर वर्गों में मतभेद और आंतरिक कलह दबे हुए रहते थे, परन्तु जरा सा अवसर मिलते ही उनके आंतरिक संघर्ष बहुधा हिंसक रूप में सामने आ जाते थे। प्रारंभ में **इक्ता** व्यवस्था से केन्द्रीय सत्ता को मदद मिली। इनका स्थानांतरित होना और स्थायी न होना सुल्तान की शक्ति का प्रतीक थे। जबकि इन तत्वों की समाप्ति (विशेष कर फीरोज़ तुगलक के काल में) ने राज्य की शक्ति के विघटन का मार्ग प्रशस्त कर दिया। विभिन्न क्षेत्रों में स्वायत्त और स्वतंत्र राजनीतिक केन्द्रों की स्थापना ने इस प्रक्रिया को तीव्र कर दिया। मंगोलों के आक्रमणों से भी कभी-कभी सल्तनत को हानि पहुँचती थी। परन्तु कुल मिलाकर उनके आक्रमणों ने सल्तनत के राजनीतिक और आर्थिक ढाँचे को अधिक प्रभावित नहीं किया।

18.8 शब्दावली

अइज़्ज़ा: "जो प्रिय हों" (मुहम्मद तुगलक अपने खुरासानी अमीरों को अइज़्ज़ा कहता था)

उमरा: अमीर का बहुवचन

यारान-ए-हश्म: सैनिक

18.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) भाग 18.2 देखिए।
2) भाग 18.3 देखिए।
3) भाग 18.3 देखिए।

बोध प्रश्न 2

1) भाग 18.4 देखिए।
2) भाग 18.5 देखिए।

इस खंड के लिए कुछ उपयोगी पुस्तकें

A.B.M. Habibullah, *The Foundation of Muslim Rule in India.*

W.H. Moreland, *The Agrarian System of Moslem India.* (Chapters II & III; Apendices A, B and C)

R.P. Tripathi, *Some Aspects of Muslim Administration.*

K.S. Lal, *History of the Khaljis* (Chapter XI)

Mohammad Habib & K.A. Nizami, *A Comprehensive History of India,* Vol. V.

Tapan Ray Chaudhuri, & Irfan Habib *Cambridge Economic History of India,* Vol. I, pp-45–82).

परिशिष्ट 1

तेरहवीं और चौदहवीं सदियों के प्रांतीय गवर्नर

अध्याय 11 में "प्रांत" और "गवर्नर" शब्दों का प्रयोग दो प्रत्यय समूहों को इंगित करने के लिए किया गया है, जिनको मैं या तो समानार्थक मानता हूँ, या जिनके बीच बहुत कम आंतरिक विभेद पाता हूँ, जिसका हमारे वर्तमान उद्देश्य की दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं है। पहला समूह है **विलायत, वली**। **विलायत** शब्द का प्रयोग ऐतिहासिक विवरणों में विविध अर्थों में किया गया है, जिनको संदर्भ के आधार पर लगभग हमेशा ही सटीकता से परिलक्षित किया जा सकता है। इसका अर्थ हो सकता है (1) साम्राज्य का एक क्षेत्र अर्थात् प्रांत, (2) साम्राज्य का एक अनिश्चित क्षेत्र अथवा अंचल, (3) साम्राज्य का समूचा क्षेत्र, (4) एक अन्य देश (5) किसी विदेशी का अपना देश (इस अंतिम अर्थ में अंग्रेजी भाषा के अंतर्गत "ब्लाइटी" (Blighty) शब्द को सहज मान्यता मिल गई है। **वली** को कभी-कभी अन्य देश के शासक के अर्थ में प्रयोग किया जाता है, लेकिन इसका सामान्य अर्थ है साम्राज्य के एक प्रांत का गर्वनर, अर्थात्, सम्राट अथवा उसके मंत्रियों के अधीन कार्य करने वाला स्थानीय अधिकारी।

जहाँ तक मेरी जानकारी है, ऐसा संकेत कभी नहीं मिलता कि उपरोक्त काल में **वली** का नौकरशाही पद से अधिक कुछ अर्थ था और **गवर्नर** शब्द से इसका सटीक बोध हो जाता है, और यह बात पश्चिम एशिया के समूचे इतिहास पर लागू होती है। दूसरे समूह, **इक्ता**, **मुक्ती** (अधिक सटीक रूप में, iqta, muqti) के संबंध में हम भिन्न स्थिति पाते हैं। उन्नीसवीं सदी के अनेक अनुवादकों ने इन प्रत्ययों का भाषांतर यूरोप की सामंती व्यवस्था से ली गई शब्दावली में किया है। कुछ हाल के लेखकों ने भी उन्हीं का अनुसरण किया है, जिनकी पुस्तकों में हम जागीर (fiefs), सामंतीय सरदार (feudal chief) और ऐसे अन्य शब्दों का प्रयोग पाते हैं। सामान्य पाठक को निष्कर्ष के लिए बाध्य होना पड़ता है कि दिल्ली सल्तनत का संगठन एक असमरूप प्रक्रिया थी, जिसके अंतर्गत किन्हीं प्रांतों पर नौकरशाही गवर्नर **(वली)** शासन करते थे, लेकिन देश के अधिकांशत: भाग **(इक्ता)** ऐसे व्यक्तियों (Muqti) के अधीन थे, जिनकी स्थिति आधुनिक यूरोप के सामन्तों (barons) से बहुत कुछ मेल खाती थी। इसलिए इस सवाल की परख जरूरी है कि क्या ये व्यंजक सचमुच तथ्यों को इंगित करते हैं। अथवा दूसरे शब्दों में, क्या राज्य के अंतर्गत कुछ ऐसे तत्व थे जिनके लिए सामंती व्यवस्था की नामांकन प्रणाली का प्रयोग समुचित रूप में किया जा सकता है। यूरोपीय सामंती व्यवस्था की प्रकृति के बारे में छात्रों को पर्याप्त जानकारी है: दिल्ली सल्तनत के अंतर्गत **मुक्ती** की स्थिति को इतिहास लेखों के आधार पर पुष्ट किया जा सकता है। एक तुलनात्मक अध्ययन से यह देखा जा सकेगा कि उत्तर भारत के कृषि इतिहास के विवेचन में ये शब्द समुचित प्रकाश डालते हैं अथवा विभ्रम को जन्म देते हैं।

इंडो-पर्शियन साहित्य में **इक्ता** का सामान्य अर्थ है भविष्य में की जाने वाली सेवाओं के लिए दिया जाने वाला राजस्व अनुदान। मुगल काल में यह शब्द (**तुयूल** के साथ-साथ) अधिक सुपरिचित शब्द **जागीर** के पर्याय के रूप में बारंबार प्रयुक्त हुआ है। तेरहवीं सदी में भी इस शब्द का वही अर्थ हो सकता है, इसकी पुष्टि **बर्नी** (60, 61) के उन 2000 फौजियों के एक विवरण से होती है, जिन्हें प्रतिबंधित भू-अनुदान प्रदान किये गये थे, लेकिन वे उन प्रतिबंधित सेवाओं से बिल्कुल बच निकले। इन व्यक्तियों के अधीन आने वाले गांवों को **इक्ता** कहा गया है और इन व्यक्तियों को **इक्तादार** (iqtadar) लेकिन इस समय **इक्ता** शब्द का आमतौर पर अधिक संकुचित अर्थ में प्रयोग किया जाता था, जैसा कि **बर्नी** ने (50) "**बीस इक्ता**" पद का प्रयोग सल्तनत के विशेष भाग को सूचित करने के लिए किया है। यह स्पष्ट है कि "**बीस इक्ता**" उपरोक्त लेख में मिलने वाले "2000 **इक्ता**" से बिल्कुल भिन्न श्रेणी क्रम की ओर संकेत करता है। इतिहास लेखन संबंधी समूची सामग्री में **इक्ता** का उल्लेख भू-अनुदानों के रूप में ही नहीं, बल्कि प्रशासनिक दायित्वों के रूप में किया गया है। दोनों अर्थों के बीच विभेद को स्वामित्व संबंधी श्रेणियों के प्रयोग से अत्यंत स्पष्ट रूप में चिन्हित किया गया है। इस काल में **इक्तादार** का हमेशा ही सामान्य अर्थों में अभिप्राय होता था, भू-अनुदान प्राप्तकर्त्ता, लेकिन **मुक्ती** का आशय था प्रशासनिक दायित्वों को पूरा करने वाला। सवाल उठता है, **मुक्ती** की स्थिति को सामंती अथवा नौकरशाही माना जाए ?

---

1. **यह** परिशिष्ट डब्ल्यू. एच. मोरलैण्ड की पुस्तक **Agrarian System of Moslem India** के परिशिष्ट 'ब' का

पहले हम उस कुलीन वर्ग की उत्पत्ति पर विचार करेंगे जिसमें से ही **मुक्ती** का चयन होता था। सबसे पहले ऐतिहासिक विवरण से हमें उस समय के सभी प्रमुख कुलीनों की जीवनियाँ [1] मिलती हैं और हमें उनसे पता चलता है कि लगभग प्रत्येक व्यक्ति ने, जिसका उल्लेख **मुक्ती** के रूप में मिलता है, अपने कार्य जीवन की शुरुआत शाही गुलाम के रूप में की थी। दिल्ली के दूसरे सुल्तान शमसुद्दीन अल्तमश ने, जो स्वयं पहले सुल्तान का गुलाम रह चुका था, विदेशी गुलाम खरीदे, उन्हें अपनी निजी सेवाओं के लिए नियुक्त किया और उनकी क्षमता संबंधी अपने मूल्यांकन के आधार पर अपने साम्राज्य के सर्वोच्च पदों तक उनकी क्षमताओं के अनुसार प्रोन्नति दी।

मेरी दृष्टि में ऐसा बिल्कुल असंभव लगता है कि इस प्रकार के कुलीन वर्ग का ऐसी सामंतीय व्यवस्था के रूप में विचार किया जाय जिसके अंतर्गत सुल्तान अपने क्षेत्रीय मातहतों का प्रमुख मात्र हो। वस्तुत:हम देखते हैं गुलामों से भरा एक शाही परिवार, जो अपनी योग्यता अथवा पक्षपात के आधार पर दासोचित कर्त्तव्यों के स्तर से उठकर प्रांतों अथवा समूचे साम्राज्य के प्रशासन स्तर तक जा सकते थे — सारत: यह सामान्य एशियाई प्रकार की नौकरशाही थी। **मुक्ती** की वास्तविक स्थिति के परीक्षण से यही निष्कर्ष निकलता है। जहाँ तक मेरी जानकारी है, इसका विवरण किन्हीं निश्चित शब्दावली में नहीं किया गया है, लेकिन उपलब्ध ऐतिहासिक सामग्री में अंकित घटनाएं निम्नांकित सारांश को समुचित ठहराती है।

1. **मुक्ती** को अपना कोई क्षेत्रीय अधिकार प्राप्त नहीं था और न वह किसी अंचल विशेष पर दावा कर सकता था। उसकी नियुक्ति सुल्तान ही करता था जो उसे किसी भी समय निष्कासित अथवा अन्य पद पर स्थानांतरित कर सकता था। इस अवधारणा की पुष्टि करने वाले अंश इतने हैं कि उस सबको उद्धृत करना असंभव है। लगभग कोई दस पृष्ठ पढ़ने पर हमें सुल्तान के इस प्राधिकार के प्रयोग के उदाहरण मिल ही जाते हैं। जीवनियों का उपरोक्त सार-संक्षेप यह स्पष्ट करने के लिए काफी है कि तेरहवीं सदी में **मुक्ती** का स्थान विशेष से कोई अनिवार्य संबंध नहीं होता था, सुल्तान की इच्छानुसार उसे लाहौर से लखनौती तक कहीं भी नियुक्त किया जा सकता था। इसी प्रकार आगामी (चौदहवीं) सदी से भी उदाहरण लिया जा सकता है। बर्नी (42) के विवरण के अनुसार गियासुद्दीन तुगलक ने तख्त संभालने के बाद अपने रिश्तेदारों तथा समर्थकों को **इक्ते** प्रदान किये।

नीचे इस "इतिहास" पुस्तिका के आधार पर किन्हीं विशेष जीवनियों का सार संक्षेप दिया गया है।

तगान खान (पृ. 242) को शमसुद्दीन ने खरीद कर क्रमश: **साकी- खास**, **ए दवातदार**,[2] **चाशनीगीर**, **अमीर-ए आखूर**, बदायूं के **मुक्ती** और फिर लखनौती के **मुक्ती** के रूप में नियुक्त किया, जहाँ उसे शाही प्रतीक चिन्ह प्रदान किए गए।

सैफुद्दीन ऐबक (पृ. 259) को सुल्तान ने खरीद कर कालक्रम में **सर-ए जमादार**, **सर-ए जानदार**, समाना के **मुक्ती**, बरन के **मुक्ती**, और अंतत: **वकील-ए दर** के रूप में नियुक्त किया, जो उस समय दरबार का सबसे अधिक सम्मानित पद था।

तुगरिल खान (पृ. 261) भी एक गुलाम था, जिसने क्रमश: **नायब-ए चाशनीगीर**, **अमीर-ए मजलिस**, **शाहनगी-ए फील**, **अमीर-ए आखूर**, सरहिंद और बाद में लाहौर, कन्नौज तथा अवध के **मुक्ती** के रूप में काम किया। अंतत: उसे लखनौती मिला जहाँ उसने राजा की पदवी धारण की।

उलुग खान (पृ. 281) जो बाद में बलबन के नाम से मशहूर हुआ, के विषय में कहा जाता है कि उसका संबंध तुर्किस्तान के एक कुलीन परिवार से था, लेकिन अनुल्लेखित परिस्थितियों में उसे गुलाम बना लिया गया था। उसे बेचने के लिए बगदाद और फिर गुजरात लाया गया, जहाँ से उसे एक गुलाम विक्रेता दिल्ली लाया और सुल्तान को बेच दिया। उसे पहले एक निजी सेवक के रूप में नियुक्त किया गया था, फिर वह क्रमश: खेल संचालक, अस्तबल निरीक्षक, हांसी का **मुक्ती**, लार्ड चैम्बरलेन बना, और फिर दिल्ली सुल्तान का उप-राजा और फिर बाहैसियत शासक।

---

1. टी. नासिरी, बुक XXII, पृ. 229.
2. **दवातदार** शब्दकोष में मिलने वाला "राजकीय सचिव" अर्थ समुचित नहीं लगता, क्योंकि हमें प्राप्त सूचना के अनुसार सुल्तान का रत्न जड़ित कलमदान खो देने के कारण तगान खान को कठोर दंड दिया गया था। मैं इस शब्द को सम्राट की लेखन सामग्री की देखरेख के लिए जिम्मेदार कर्मचारी के रूप में ही करता हूँ। परवर्ती काल में मुख्य **दवातदार** एक उच्च अधिकारी हुआ करता था।

वे ऐसे व्यक्ति थे जिनका अपनी नियुक्ति के क्षेत्रों से कोई संबंध नहीं था, लेकिन जिनका चयन उनकी प्रशासनिक क्षमता के लिए किया गया था। ऐसी व्यवस्था ऐसी किसी चीज के ठीक उल्टी है, जिसको सही अर्थों में सामंतीय व्यवस्था के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

2. **मुक्ती** मूलत: वे प्रशासनिक जिम्मेदारियाँ निभाता था जिनके लिए उसकी नियुक्ति की गई होती थी। यह तथ्य उस समय के ऐतिहासिक ग्रंथों के किसी भी सजग पाठक को स्पष्ट होगा। इसके अनेक उदाहरण दिये जा सकते हैं, लेकिन निम्नांकित ही शायद पर्याप्त सिद्ध हों। बर्नी (पृ. 96) ने विस्तार से बताया है कि बलबन ने किस प्रकार अपने बेटे बुगरा खान को बंगाल की गद्दी पर बिठाया और इस अवसर पर उसके द्वारा दी गई सलाह को भी दर्ज किया। अपने बेटों को आलसी और काहिल पाते हुए उसने विशेष रूप से सुल्तान को अपनी गद्दी बनाए रखने के लिए सक्रिय सतर्कता की आवश्यकता पर बल दिया। इस प्रसंग में उसने सुल्तान (**इक्लीमदारी**) और गवर्नर (**विलायतदारी**) के बीच अंतर भी स्पष्ट किया। उसके अनुसार एक सुल्तान की गलतियां असाध्य और उसके परिवार के लिए संघातिक हो सकती हैं जबकि गवर्नरशिप (**विलायतदारी**) के मामले में लापरवाह और बेअसर होते हुए भी **मुक्ती** को, आर्थिक दंड अथवा बर्खास्तगी के खतरे के बावजूद, अपने जीवन तथा अपने परिवार के लिए भयभीत होने की जरूरत न थी और वह पुन: राजकीय संरक्षण पा सकता था। इस प्रकार **मुक्ती** की विशेष भूमिका गवर्नर पद की थी और अपने दायित्वों में असफल रहने पर उसे आर्थिक दंड अथवा बर्खास्तगी का सामना करना पड़ता था।

आगामी (चौदहवीं) सदी से अफीफ (414) द्वारा दिया गया एक विवरण ले सकते हैं, किस प्रकार राजस्व मंत्रालय में नियुक्त कुलीन व्यक्ति आइनउल मुल्क ने संबंधित मंत्री से झगड़ा कर लिया और फलस्वरूप बर्खास्त कर दिया गया। सुल्तान ने तब उसे यह कहते हुए **मुल्तान** का **मुक्ती** नियुक्त किया, "प्रांत (**इक्ता**) में जाओ और उस स्थान की जिम्मेदारियों में) (**कारहा वा करदारहा**) अपने को लगाओ। आइनउल मुल्क ने जवाब दिया: "जब मैं **इक्ता** के अंतर्गत प्रशासन कार्य (**अमल**) संभालूँगा और उस स्थान की जिम्मेदारियां निभाना चाहूँगा, मेरे लिए राजस्व मंत्रालय को लेखा-जोखा सौंपना संभव नहीं होगा। मैं उसे सीधे दरबार को भेजूंगा।" इस बात पर सुल्तान ने मुल्तान के मामलों को राजस्व मंत्रालय से अलग कर दिया। आइनउल मुल्क ने नियुक्ति स्वीकार कर ली। उपरोक्त गद्यांश की भाषा **मुक्ती** की स्थिति को मात्र प्रशासकीय रूप में दिखाती है।

राज्य की सेवा के लिए एक फौजी टोली हर समय तैयार रखना **मुक्ती** की जिम्मेदारी होती थी। इन टोलियों का ओहदा कुलीनों के लिए जारी किए गये गियासुद्दीन तुगलक के आदेशों (बर्नी, 431) से देखा जा सकता है, जिनको उसने **इक्ता** और **विलायत** दे रखे थे। उसने कहा था सैनिकों के वेतन के छोटे से छोटे हिस्से का भी लालच मत करो। तुम अपने हिस्से से उन्हें कुछ देते हो या नहीं, यह फैसला तुम पर ही निर्भर करता है। लेकिन सैनिकों के नाम से निकाले गये एक छोटे हिस्से की भी इच्छा करते हो तो कुलीनता का पद तुम्हें नहीं मिलना चाहिए था। वह कुलीन जो सेवकों के वेतन के छोटे से हिस्से का भी उपयोग करता है, अच्छा हो वह धूल फांककर रहे। **मुक्ती** की फौजी टोलियों की तादाद और वेतन सुल्तान द्वारा तय होता था, जो उनका खर्चा संभालता था। **मुक्ती** अपनी इच्छानुसार अपने साधनों से उनका वेतन बढ़ा सकता था, लेकिन इस संबंध में उसकी स्वतंत्र शक्ति की यही सीमा भी थी।

4. **मुक्ती** को अपने क्षेत्र से जायज राजस्व की वसूली करनी होती थी और अनुमोदित खर्चे, जैसे सैनिकों का वेतन अलग करके अतिरिक्त धन उसे राजधानी स्थित राजकोष को भेजना होता था। उदाहरणार्थ, (बर्नी, पृ. 220) सिंहासनारूढ़ होने से पहले अलाउद्दीन ख़लजी, जब वह कड़ा और अवध का **मुक्ती** था और दक्खन क्षेत्र में आक्रमण की योजना बना रहा था, उसने अपने प्रांतों के अतिरिक्त राजस्व की केंद्र द्वारा मांग को स्थगित करने के लिए आवेदन किया ताकि वह इस धन को कुछ और सैनिक टोलियाँ बनाने में लगा सके। उसने वादा भी किया कि वापस आने पर वह स्थगित अतिरिक्त राजस्व का लाभांशों के साथ राजकोष में भुगतान कर देगा।

5. **मुक्ती** के वित्तीय कारोबार — प्राप्ति तथा व्यय — दोनों ही का लेखा-परीक्षण राजस्व मंत्रालय के अधिकारियों द्वारा किया जाता था। उसके (**मुक्ती**) पास बची राशि की उगाही क्रमबद्ध तरीके से, किन्हीं सुल्तानों के अधीन बड़ी सख्ती से, की जाती थी। गियासुद्दीन तुगलक के उपरोक्त आदेश यह संकेत देते हैं कि **इक्ता** और **विलायतों** के मालिकों को इस प्रक्रिया के अधीन बहुत परेशानी का सामना करना पड़ता था। उसका निर्देश था कि इस मामले में उनके साथ छोटे अधिकारियों जैसा सलूक नहीं होना चाहिए। उसके बेटे मौहम्मद के शासनकाल में यह सख्ती और बढ़ा दी गई, जैसा कि बर्नी (पृ. 556, 574) फिरोज के चतुर एवं लचीले प्रशासन द्वारा अपनाए गए ठीक प्रतिकूल रुझान पर बल देता है। फिरोज के अधीन इस मसले को लेकर कोई भी **वली** या **मुक्ती** बरबादी का शिकार नहीं हुआ।

मुक्ती की हैसियत के संबंध में यह कथन शुद्ध नौकरशाही संगठन का संकेत देता है। हम इस संगठित विधि के अंतर्गत सुल्तान की मर्जी से अधिकारियों को नियुक्त, स्थानांतरित, निष्कासित अथवा दंडित होते पाते हैं, उन्हें सुल्तान के आदेशों के अधीन अपने क्षेत्र का प्रशासन करना होता था और वे राजस्व मंत्रालय के सुदृढ़ वित्तीय नियंत्रण के अधीन होते थे। इनमें से किसी भी विशेषता का समतुल्य हम यूरोप की सामंती-व्यवस्था में नहीं पाते। यूरोपीय इतिहास के एक अध्येता ने जिसको मैंने उपरोक्त सारांश दिखाए थे, यह मत सामने रखा कि सादृश्य सामंती संगठन विधि के साथ नहीं, बल्कि उन नौकरशाहियों के साथ है जिन्हें इंग्लैंड के हेनरी द्वितीय जैसे शासकों ने सामंतवाद के विकल्प के रूप में स्थापित करने का प्रयास किया। सामंती शब्दावली का प्रयोग शायद इस तथ्य से प्रेरित था कि दिल्ली सल्तनत के कुछ कुलीन किन्हीं अवसरों पर सामंतों की तरह बर्ताव करते थे, अर्थात् शाही तख्त पर कब्जे के लिए वे बगावत का सहारा लेते थे अथवा इस या उस पक्ष की ओर से मुठभेड़ में लगते थे। लेकिन कम से कम एशियाई परिवेश में नौकरशाह भी उसी प्रकार बागी हो सकते हैं जैसे कि सामंती 'बैरन' (barons) उनके बीच सादृश्य इतना कम और सतही है कि सामंतवाद संबंधित शब्दावली और उसके द्वारा अभिसूचित भ्रांत धारणाओं को उचित नहीं ठहराया जा सकता। ये राजशाहियाँ नौकरशाही तथा सामंतवाद का सम्मिश्रण नहीं थी इनका प्रशासन पूरी तरह नौकरशाही की तरह था।

यह सवाल बना रहता है कि **वली** और **मुक्ती** के पदस्तर अथवा प्रकार्यों के बीच क्या कोई अंतर था? इतिहास लेखों में **वली** का इतना कम उल्लेख मिलता है कि उनके आधार पर वैसा कोई वक्तव्य नहीं दिया जा सकता जैसा कि **मुक्ती** से संबंधित सामग्री से संराव है। निरंतर प्रयोग की जाने वाली दोहरी शब्दावली **वली** और **मुक्ती** अथवा **इक्ता** और **विलायत** दिखाते हैं कि ये दोनों संस्थाएं किसी भी दृष्टि से एक जैसी सामान्य प्रकृति की थीं लेकिन इस पर इस सीमा तक बल नहीं दिया जा सकता कि विवरण क्रम में सामने आने वाले संभावित अंतर को भी नजरअंदाज कर दिया जाय। एक लेखक के कथनानुसार यह अंतर राजधानी से सापेक्षिक दूरी का था।[3] निकटवर्ती प्रांत **इक्ता** के रूप में जाने जाते थे और सुदूरवर्ती प्रांत **विलायत** के रूप में। लेकिन ऐतिहासिक विवरणों की भाषा के विस्तृत विश्लेषण से इस विचार की पुष्टि नहीं होती। स्वयं शब्दों पर ही ध्यान दें तो यह स्पष्ट होगा कि **वली** नौकरशाही गर्वनर के लिए उपयुक्त इस्लामी शब्द हैं। आठवीं सदी में बगदाद के अबू यूसुफ (पृ. 161, 163) ने इसी अर्थ में इस शब्द का प्रयोग किया है, और वर्तमान काल में तुर्कीस्तान में इसी अर्थ में यह शब्द प्रचलित है। मैने आरंभिक इस्लामी साहित्य में, जो अनुवादों के माध्यम से मुझे प्राप्त है, **इक्ता** तथा **मुक्ती** शब्दो की छानबीन नहीं की है, लेकिन जिस अर्थ में पहला (**इक्ता**) शब्द भारत में प्रचलित बना रहा, उसे अनुदान के ही अर्थ में हम समुचित अनुभव कर सकते हैं कि एक प्रांत के लिए **इक्ता** के प्रयोग का मूल आशय था कि प्रांत अनुदान में दिया गया था, अर्थात् गर्वनर इस बात के लिए जिम्मेदार था कि वह राजकीय सेवाओं के लिए फौजी टोली का रखरखाव करे। यह संभव है कि किसी समय **वली** और **मुक्ती** के बीच अंतर इसी बात का रह गया हो कि पहले को सैनिक टोलियां नहीं रखनी पड़ती

---

3. कानूनगो, **शेरशाह** (पृ. 349, 350) बर्नी ने **विलायत** शब्द का प्रयोग दिल्ली के निकटवर्ती प्रांतों जैसे बरन (पृ. 58), अमरोहा (पृ. 50) अथवा समाना (पृ. 483) के लिए किया है जबकि मुल्तान (पृ. 584) और मरहट, अथवा मराठा देश (पृ. 390) का विवरण **इक्ता** के रूप में किया गया है। चौदहवीं सदी के किन्हीं कालखंडों में कुछ दूरवर्ती प्रांतों का भिन्न स्तर था, वे गर्वनर के बजाय **वजीर** के अधीन होते थे (बर्नी, 379, 397, 454 इत्यादि), लेकिन उनको **विलायत** अथवा **इक्ता** किसी भी रूप में चरित्रांकित नहीं किया

थीं जबकि दूसरे को ऐसा करना पड़ता था। लेकिन यदि दोनों के बीच मूल अंतर यही था तो वह भी गियासुद्दीन तुगलक के समय तक बिल्कुल अप्रासंगिक हो गया जिसके सैनिक टोलियों से संबंधित आदेश उन दोनों ही वर्गों (कुलीन) पर जिनको उसने **इक्ता** और **विलायत** दिए थे, समान रूप से लागू होते थे।

ऐतिहासिक विवरण **वली** और **मुक्ती** के बीच किसी अन्य संभावित अंतर का संकेत नहीं देते। यह तथ्य कि किन्हीं प्रसंगों में हम **विलायत** के **मुक्ती** का उल्लेख पाते हैं[4] इस बात का संकेत देता है कि कम से कम व्यवहारत: ये शब्द समानार्थक थे। इस संभावना से इन्कार नहीं किया जा सकता कि हैसियत संबंधी कुछ मामूली अंतर थे, उदाहरण के लिए, राजस्व मंत्रालय की लेखा-जोखा प्रणाली के संबंध में, लेकिन कृषि प्रशासन के दृष्टिकोण से वे बहुत महत्वपूर्ण नहीं हो सकते। मेरे विचार से, हमारा इस विचार को पूरी तरह अस्वीकार करना समुचित ही होगा कि दिल्ली राजशाही में कुछ ऐसे तत्व थे जिनके लिए सामंती-व्यवस्था से संबंधित शब्दावली का प्रयोग किया जा सकता है। राजस्व मंत्रालय के सीधे अधीन आने वाले क्षेत्रों के अलावा, समूचा राज्य नौकरशाही गवर्नरों द्वारा प्रशासित प्रांतों में विभाजित था। इन गवर्नरों और मंत्रालय के बीच संबंधों में अंतर पाया जा सकता है, लेकिन जहाँ तक प्रांत विशेष के कृषिकर्म प्रशासन का सवाल है, **वली** और **मुक्ती** को यदि पूर्णतया नहीं तो कम से कम व्यवहार में समानार्थक माना जा सकता है।

यह बात और जोड़ी जानी चाहिए कि परवर्ती शब्द बहुत समय तक प्रचलित नहीं रहा। पंद्रहवीं सदी के मध्य में लिखी गई **तारीख-ए-मुबारकशाही** में पूर्ववर्ती ऐतिहासिक विवरणों का सारांश देते हुए यह शीर्षक बनाए रखा गया है, लेकिन स्वयं अपने युग का विवरण देते हुए लेखक ने **अमीर** शब्द का प्रयोग किया है। इस शब्द का प्रयोग एक सदी पहले ही इब्नबतूता ने किया था। वह भारतीय गर्वनरों की चर्चा कभी **वली** और कभी **अमीर** के रूप में करता है, लेकिन जहाँ तक मैंने पाया है **मुक्ती** के रूप में कभी नहीं। संभवत: उसके समय तक **अमीर** शब्द का व्यापक प्रयोग होने लगा था। अकबर के शासनकाल के लेखक निज़ामुद्दीन अहमद की भाषा की तुलना बर्नी से करने पर जिसका सारांश उसने दिया। यह स्पष्ट होता है कि उसने इसके स्थान पर **हाकिम** शब्द अपनाया। फरिश्ता ने किन्हीं अवसरों पर **मुक्ती** शब्द की पुनरावृत्ति की, लेकिन अधिकांशत: **हाकिम**, **सिपहसालार** अथवा किन्हीं अन्य आधुनिक समतुल्य शब्दों का प्रयोग किया। अकबर के शासनकाल तक **मुक्ती** स्पष्टत: एक पुरातात्विक शब्द बन गया था।

---

4. उदाहरण के लिए टी. नासिरी, अवध विलायत के **मुक्ती** (पृ. 246, 247), सरसुती **विलायत** के **मुक्ती** (पृ. 256)। जैसा ऊपर बताया गया है, बर्नी (पृ. 96) **मुक्ती** की जिम्मेदारियों का विवरण **विलायतदारी** के रूप में देता है।